

भारतीय दर्शनों में प्रमाणों की भूमिका

विक्रान्त कौशिक (एम०एड०)

प्रधानाचार्य स्वामी श्रद्धानन्द संस्कृत इण्टर कॉलिज दाहा (बागपत)

सारांश

भारतीय दर्शनों में प्रमाणों की अपनी एक भूमिका देखने को मिलती है। भारतीय दर्शन में प्रमाण का अर्थ है यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति का एक साधन है। यद्यपि हर भारतीय दर्शन प्रमाण का महत्व मानता है। लेकिन सभी दर्शनों में प्रमाणों के साथ मतभेद होता है। जब बात प्रमाण की आती है, तो हर दर्शन ने अलग-अलग प्रमाण मानते हैं। यदि हम न्याय दर्शन में प्रमाणों की बात करते हैं तो न्याय दर्शन ने चार प्रमाण माने – प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान तथा सांख्य दर्शन ने तीन प्रमाण माने हैं – प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, और बौद्ध दर्शन ने दो प्रमाण माने – प्रत्यक्ष, अनुमान, यदि देखा जाए तो सब से ज्यादा प्रमाण मीमांसा दर्शन में देखने को मिलते हैं। मीमांसा ने छः प्रमाण माने – प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में आठ प्रमाणों की बात करी है। इन्हीं प्रमाणों के आधार हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है। यदि मनुष्य ने प्रमाणों को अच्छी प्रकार से समझ लिया तो मनुष्य सही और गलत का निर्णय करने में समक्ष हो जायगा।

मूल शब्द :- प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में प्रमाण का अर्थ है यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना होता है अर्थात् जो जैसे है उसको वैसे ही रूप में समझाना यथार्थ ज्ञान कहलाता है। या दूसरी भाषा में इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है, सत्य ज्ञान प्राप्त करना ही यथार्थ ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान के साधन को प्रमाण कहा जाता है। न्याय का मुख्य विषय प्रमाण है। प्रमाण का अर्थ है – यथार्थ ज्ञान। यथार्थ ज्ञान का जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहा जाता है। महर्षि गौतम ने चार प्रमाण माने हैं – प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

प्रमाण :-

दर्शन	प्रत्यक्ष	अनुमान	शब्द	उपमान	अर्थापत्ति	अनुपलब्धि
चार्वाक	✓					
बौद्ध, वैशेषिक	✓	✓				
सांख्य, योग, जैन	✓	✓	✓			
न्याय	✓	✓	✓	✓		
मीमांसा (प्रभाकर मत)	✓	✓	✓	✓	✓	

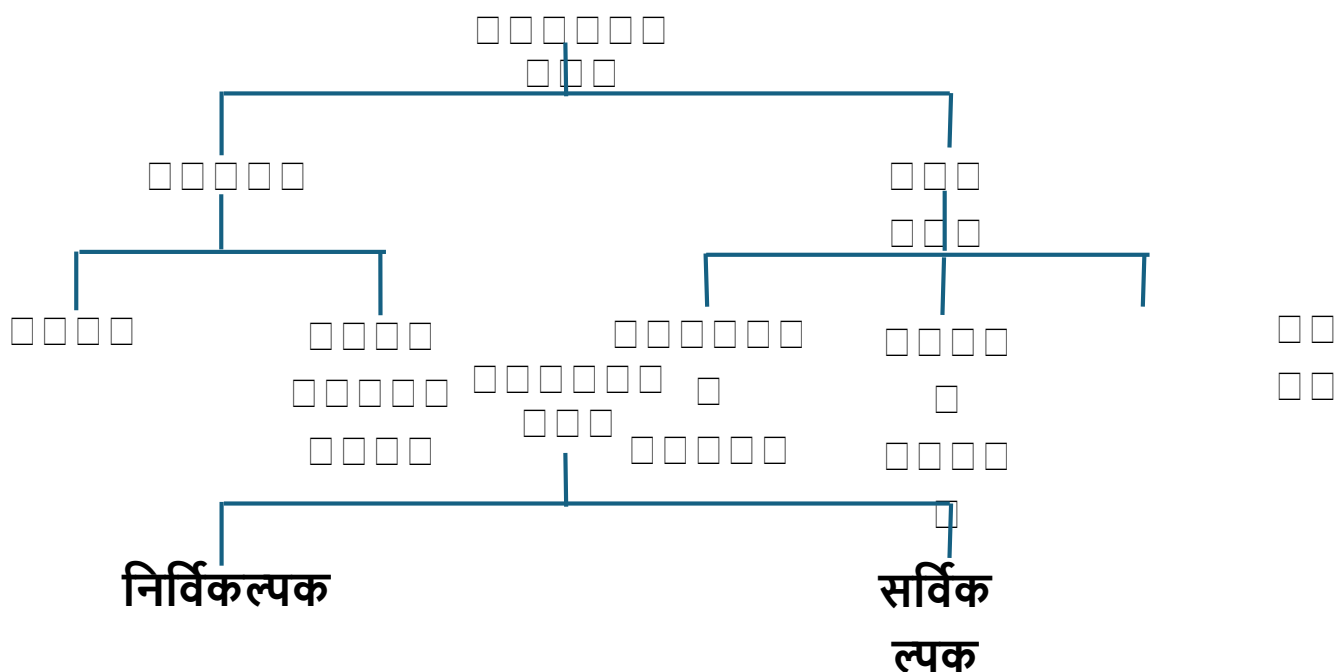
मीमांसा(कुमारिल भट्ट मत) एवं अद्वैत वेदान्त	✓	✓	✓	✓	✓	✓
---	---	---	---	---	---	---

प्रत्यक्ष प्रमाण

न्याय दर्शन में ज्ञान का स्वरूप प्रकाशमय माना गया है। न्याय दर्शन में सही ज्ञान को प्रमा कहा जाता है। मिथ्या ज्ञान को अप्रमा कहते हैं। प्रमाण यथार्थ ज्ञान के साधन को कहा जाता है। यथार्थ ज्ञान को जो चेतन मनुष्य प्राप्त करता है वह प्रमाता कहलाता है। प्रमाता को ज्ञान की अनुभूति तभी होती है जब कोई ज्ञेय विषय हो। ज्ञान के विषय को प्रेमय कहा जाता है। न्याय दर्शन में प्रथम प्रमाण प्रत्यक्ष है। न्याय के दार्शनिकों ने जितना विचार प्रत्यक्ष पर किया उतना अन्य प्रमाणों पर नहीं है। इसलिए न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण का महत्त्व देखने को मिलते हैं। प्रत्यक्ष का प्रयोग ज्ञान के साधन के अतिरिक्त साध्य के रूप में हुआ है। प्रत्यक्ष के द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह भी प्रत्यक्ष ही कहा जाता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान सन्देह रहित है। यह यथार्थ और निश्चित होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान को किसी अन्य ज्ञान के द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्यक्ष स्वयं निर्विवाद है। इसलिए कहा जाता है “**प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्**”।

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष की परिभाषा इस प्रकार से है – “इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्य – ज्ञानं प्रत्यक्षम्”। दूसरे शब्दों में, जो ज्ञान इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न हो, उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है।



लौकिक प्रत्यक्ष :- जब इन्द्रिया का वस्तु के साथ साधारण सम्पर्क होता है, तब उस प्रत्यक्ष को लौकिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

बाह्य प्रत्यक्ष :- जब बाह्य इन्द्रियों का वस्तु के साथ सम्पर्क होता है तब उस सम्पर्क से जो प्रत्यक्ष होता है उसे बाह्य प्रत्यक्ष कहा जाता है। बाह्य ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच- आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा।

मानस प्रत्यक्ष :- मन को न्याय दर्शन में एक आन्तरिक इन्द्रिय माना गया है। मन के द्वारा जो प्रत्यक्ष का ज्ञान होता है उसे मानस प्रत्यक्ष कहते हैं। मन एक ज्ञानेन्द्रियाँ है, फिर भी वह बाह्य ज्ञानेन्द्रियों से भिन्न है, बाह्य ज्ञानेन्द्रियों पंचभूतो से निर्मित होने के कारण अनित्य है। मन परमाणु निर्मित होने के फलस्वरूप नित्य है। बाह्य इन्द्रियों पंचभूतो से निर्मित है जब कि मन अभौतिक है। बाह्य ज्ञानेन्द्रियों और मन की इस विभिन्नता के कारण मन से प्राप्त ज्ञान भिन्न होता है। मानसिक अनुभूतियों – जैसे राग, द्वेष, सुख, दुःख, इच्छा प्रयत्न के साथ जब मन का संयोग होता है तब जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे मानस प्रत्यक्ष कहते हैं।

अलौकिक प्रत्यक्ष :- जब इन्द्रिया का सम्पर्क विषयों के साथ असाधारण ढंग से होता है तब उस प्रत्यक्ष को अलौकिक प्रत्यक्ष कहा जाता है। अलौकिक प्रत्यक्ष का विषय ही कुछ ऐसा है कि इन्द्रियों का उससे साधारण सम्पर्क नहीं हो सकता है।

सामान्य लक्षण:- जिस प्रत्यक्ष से जाति का प्रत्यक्ष प्राप्त होता है, उसे सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे राम, श्याम, हर व्यक्ति अलग है। लेकिन हम कहते हैं कि राम मनुष्य है जब हम उसे देखते हैं। इसका कारण यह है कि राम के प्रत्यक्षीकरण में 'मानवता' का प्रदर्शन होता है। हम गाय, घोड़ा, हाथी जैसे जानवरों को देखकर उन्हें पशु कहते हैं। साथ ही पशुओं का भी प्रत्यक्षीकरण होता है। विशेष वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण के आधार पर उनमें निहित जाति का प्रत्यक्ष ही सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है। ऐसा होता है क्योंकि व्यक्ति में जाति है। इसलिए एक व्यक्ति के प्रत्यक्ष से उसकी पूरी जाति का पता चलता है, यही कारण है कि हम सिर्फ दो चार लोगों की मौत देखते हैं और समूची मनुष्य जाति की मौत का फैसला करते हैं, क्योंकि दो चार लोगों की मौत से हम पूरी मानव जाति को जानते हैं। यह प्रत्यक्ष सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष से प्राप्त होता है, इसलिए इसे सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है।

ज्ञान लक्षण:- मानव इन्द्रियों से बहुत कुछ जानता है। प्रत्येक इन्द्रिय का आम तौर पर अलग-अलग लक्ष्य है। आँखों से रूप, कान से शब्द, नाक से गंध, त्वचा से स्पर्श, यानि किसी वस्तु के कठोरता और जीभ से स्वाद का पता चलता है यही कारण है कि प्रत्येक इन्द्रिय अलग-अलग विषयों का ज्ञान रखती है। एक इन्द्रिय से आम तौर पर दूसरी इन्द्रिय का ज्ञान होना असंभव है। आँखों से शब्द, गन्ध, स्पर्श और स्वाद का पता नहीं चल सकता। ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष अलौकिक प्रत्यक्ष का वह भेद है जिसके द्वारा मन भी अपने-अपने विषय से अलग विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। न्याय दर्शन के अनुसार, एक गुण का अनुभव होते ही दूसरा अनुभव होने लगता है, क्योंकि दो गुणों को अतीत में एक साथ प्रत्यक्ष करते रहना साहचर्य बनाता है। ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है क्योंकि यह ज्ञान पहले से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है।

योगज:- आम इन्द्रियों की क्षमता सीमित है। हम सूक्ष्म और दूर विषयों को नहीं देख सकते हैं। दूर की आवाज सुनने में असमर्थ हैं। दूरस्थ वस्तुओं को हम छू या चख नहीं सकते। परन्तु कुछ अद्वितीय लोगों को योगज ज्ञान मिलता है, जिसके माध्यम से वे भूत, वर्तमान, भविष्य और सूक्ष्म सब कुछ का अनुभव करने लगते हैं। योगी इस ज्ञान को प्राप्त करते हैं। योगाभ्यास द्वारा इन लोगों ने इस ज्ञान को अपनाया

है। यह ज्ञान दो प्रकार का है: योग में पूर्णता प्राप्त करने वाले लोगों के लिए यह ज्ञान अनन्त और स्वभाविक होता है। इस तरह के लोगों को "युक्त" कहते हैं। योग में पूर्ण नहीं हैं और आंशिक सिद्धि प्राप्त करने वाले लोगों पर ध्यान देना चाहिए। योगी इस ज्ञान को प्राप्त करते हैं। इसलिए योगज ज्ञान कहलाता है। बहुत से भारतीय दार्शनिकों ने योगज प्रत्यक्ष को प्रामाणिक माना है। जैन दर्शन का केवल ज्ञान, बौद्ध दर्शन का 'बोधि' वेदान्त का साक्षात्कार, योगज प्रत्यक्ष के विभिन्न प्रकार हैं।

सर्विकल्पक:- मान लीजिये आप एक आम का पेड़ देख रहे हैं। यहाँ जो पदार्थ प्रत्यक्ष है, उसकी संज्ञा आप जानते हैं। उसका सामान्य है वृक्षत्व विशेष है आमत्व। पेड़ के साथ – साथ आप यह सब कुछ देख रहे हैं। आपकी इन्द्रिय का विषय नाम, जाति और विशेषता से युक्त होकर प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् आप केवल वस्तु का आकार ही नहीं देखते, उसका प्रकार भी देखते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष को सर्विकल्पक कहते हैं।

“ सप्रकारकं ज्ञानं सर्विकल्पम् ”

(तर्कसंग्रह)

निर्विकल्पक:- इसके विपरीत जहाँ केवल वस्तु मात्र की ही उपलब्धि हो, उसकी प्रकारता (विशेषण) का ज्ञान नहीं हो उसे निर्विकल्पक कहते हैं।

अनुमान प्रमाण:- अनु का अर्थ है पश्चात्, मान का अर्थ है ज्ञान। अतः अनुमान का शब्दार्थ हुआ पश्चात्ज्ञान। यदि एक बात को जानने के पश्चात् उसी के द्वारा किसी दूसरी बात का भी बोध हो उसे अनुमान कहते हैं। मान लीजिए आपने देखा कहीं दूर पर धुँआ उठ रहा है, इससे आप तुरंत समझ जाते हैं कि वहाँ आग भी है। यहाँ धुँआ प्रत्यक्ष है। किन्तु आग प्रत्यक्ष नहीं है। आपको प्रत्यक्ष वस्तु के आधार पर अप्रत्यक्ष वस्तु का भी ज्ञान हो जाता है। इसी को अनुमान कहते हैं।

अनुमान



पूर्ववत् :- पूर्व अर्थात् पहले कारण। पहले के अनुसार जो अनुमान हो अर्थात् कारण से कार्य के अनुमान को पूर्ववत् अनुमान कहते हैं। जैसे :- मेघ को जल से भरा हुआ देखकर वृष्टि होगी, ऐसा कोई अनुमान करे तो उसे पूर्ववत् अनुमान कहेंगे।

शेषवत् :- शेष अर्थात् कार्य। कार्य को देखकर कारण के अनुमान को शेषवत् कहते हैं। जैसे :- नदी में जल के आधिक्य तथा वेग को देखकर कहीं वृष्टि हुई होगी, ऐसे अनुमान को शेषवत् कहते हैं।

सामान्यतो दृष्ट :- साधारण रूप से परोक्ष वस्तु का जिसके द्वारा ज्ञान हो उसे सामान्यतो दृष्ट अनुमान कहते हैं। जैसे सूर्य को प्रातःकाल पूर्व दिशा में देखने के पश्चात् सांयकाल को पुनः पश्चिम दिशा में देखकर अनुमान किया जाता है की सूर्य में गति है।

उपमान:- उपमान भी एक प्रकार का प्रमाण तर्कशास्त्र में माना गया है। यह दो मुख्य वस्तुओं के बीच में विद्यमान साधारण धर्म के आधार पर निर्भर है। किसी संज्ञा शब्द का उससे बोध कराने वाले पदार्थ के साथ सम्बन्ध के ज्ञान को 'उपमान' कहते हैं। जैसे- 'गवय' नाम के पदार्थ को न जानते हुए, किसी जंगली मनुष्य के द्वारा 'गाय' के समान 'गवय' होता है, यह सुन कर वन में जाने पर जंगली पुरुष के कहे हुए वाक्य को स्मरण कर, गाय के समान एक जन्तु को जंगल में देख कर, 'यही गवय नाम का जन्तु है' ऐसा ज्ञान किसी मनुष्य की आत्मा में उत्पन्न होता है। इसी ज्ञान को 'उपमिति' कहते हैं।

यहाँ गाय और गवय, इन दोनों में जो सादृश्य है, उसी के आधार पर यह 'उपमान' निर्भर है। गवय-रूपी संज्ञा-शब्द को गवय-रूपी जन्तु के साथ संबद्ध करने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वही ज्ञान 'उपमान' है।

शब्द:- आप्त पुरुष के वाक्य को शब्द, अर्थात् शब्द – प्रमाण कहते हैं। तत्त्व को यथार्थ देखने वाले या यथार्थ कहने वाले 'आप्त' कहे जाते हैं। वाक्य दो प्रकार के माने गये हैं – लौकिक और वैदिक। लौकिक वाक्य यदि आप्तों के मुख से निकले, तब तो प्रमाण है, अन्यथा अप्रमाण है, क्योंकि लोक में सभी आप्त हो नहीं सकते। वेद – वाक्य तो ईश्वर – प्रणीत है और ईश्वर सर्वदा है। इसलिए वेद – प्रमाण सभी प्रमाण है। ये चार प्रमाण तर्कशास्त्र में माने जाते हैं। इन्हीं के द्वारा सभी पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है और पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होने से ही तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होती है और तभी दुःखो से सब दिन के लिए मुक्ति मिलती है। यही दुःखो की चरम समाप्ति या चरम सुख की प्राप्ति तर्कशास्त्र का परम ध्येय है। इसी के लिए प्रमाणों का ज्ञान आवश्यक है।

वाक्यर्थबोध के नियम है – वाक्य के अर्थ के ज्ञान (वाक्यर्थबोध) के लिए वाक्य में 'आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि और तात्पर्यज्ञान का होना आवश्यक है।

आकांक्षा - दूसरे पद के उच्चारण हुए बिना जब किसी एक पद का अभिप्राय समझ में न आवे, तो इन पदों के परस्पर सम्बन्ध को 'आकांक्षा' कहते हैं। क्रिया-पद के बिना कारक-पद की 'आकांक्षा' है। अर्थात् एक पद के उच्चारण को सुन कर सुनने वाले के मन में जो उसके सम्बन्ध में अधिक जानने की इच्छा, अर्थात् दूसरे पदों को सुनने की 'आकांक्षा', उत्पन्न होती है, उसे ही 'आकांक्षा' कहते हैं। वास्तव में यह 'आकांक्षा' तो चैतन्ययुक्त सुनने वाले के मन में होती है, किन्तु यह पद के उच्चारण और श्रवण के कारण उत्पन्न होती है। इसलिए उपचार से शब्दों को आकांक्षा वाला कहा गया है। जैसे- 'देवदत्त' यह सुनकर किसी के मन में देवदत्त के सम्बन्ध में अधिक जानने की एक इच्छा उत्पन्न होती है- जिसकी पूर्ति पुनः दूसरे शब्द के उच्चारण के बिना नहीं हो सकती है। जैसे- 'जाता है'। 'जाता है', इस पद को सुनकर वह 'आकांक्षा' निवृत्त हो जाती है, क्योंकि इन दोनों पदों से एक सम्बद्ध ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इसलिए ये दोनों पद परस्पर 'साकांक्ष' कहे जाते हैं। केवल कारक-पदों से ही कोई अर्थबोध नहीं क्योंकि इन शब्दों में होता है। जैसे-पुरुष, गौ, हाथी इत्यादि, 'आकांक्षा' नहीं है।

योग्यता- पदों के उच्चारण से उनमें परस्पर अर्थ का बोध होने की शक्ति 'योग्यता' कही जाती है। जैसे 'आग से भूमि सींची जाती है।' इन शब्दों को सुनकर इनसे उत्पन्न जो एक अर्थ होता है, वह बाधित है, अर्थात् ठीक-ठीक अर्थ ज्ञात नहीं होता, क्योंकि सींचना तो जल से होता है, आग से नहीं। इसलिए इन शब्दों में 'योग्यता' नहीं है और ये शब्द 'प्रमाण' नहीं हैं, अर्थात् इन शब्दों से कोई सम्बद्ध ज्ञान उत्पन्न

नहीं होता, किन्तु 'पुस्तक लाओ', ऐसा कहने से एक सम्बद्ध अर्थ का बोध होता है, क्योंकि इन शब्दों में 'योग्यता' है। इसलिए बिना 'योग्यता' से युक्त वाक्य से शाब्दबोध नहीं होता।

सन्निधि - सन्निधि अर्थात् समीपस्थ पदों को बहुत विलम्ब के बिना (अर्थात् एक साथ) उच्चारण करना 'सन्निधि' कही जाती है। इसे ही 'आसक्ति' भी कहते हैं। किसी आप्तवाक्य के द्वारा एक सम्बद्ध अर्थ का ज्ञान 'शब्द-प्रमाण' से होता है। इसलिए यदि एक किसी वाक्य का एक शब्द प्रातः काल, दूसरा शब्द मध्याह्न में और तीसरा शब्द सायंकाल को उच्चारण किया जाय, तो उस वाक्य से कोई सम्बद्ध अर्थ का बोध नहीं हो सकता। किन्तु यदि वे ही पद बिना विलम्ब के एक साथ उच्चारण किये जायें, तो एक सम्बद्ध अर्थ का बोध हो जायगा, जैसे- 'देवदत्त एक गाय लाता है।' ये सभी पद एक साथ उच्चारण किये जाने पर सम्बद्ध अर्थ देते हैं, अन्यथा नहीं। इसलिए 'सन्निधि' भी शाब्दबोध में आवश्यक है।

तात्पर्यज्ञान - इन तीनों के अतिरिक्त 'तात्पर्यज्ञान' भी पदों से एक सम्बद्ध अर्थ का बोध कराने में कारण होता है। जैसे- भोजन करते हुए कोई मनुष्य 'सन्धव ले आओ' ऐसा कहे, तो जब तक सुनने वाले को उन शब्दों का तात्पर्य मालूम न हो, तब तक वह ठीक-ठीक यह अर्थ नहीं समझ सकता कि बोलने वाला 'सैन्धव' 'नमक' चाहता है, क्योंकि दाल में नमक की कमी है या 'सैन्धव', अर्थात् सिन्धु देश का घोड़ा, लाने को कहता है, जिसमें भोजन कर शीघ्र किसी आवश्यक कार्य के लिए घोड़े पर जाया जा सके। यह निश्चय तो तभी किया जा सकता है, जब सुनने वाला बोलने वाले का 'तात्पर्य' समझ सके।

पदों से सम्बद्ध अर्थ के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ये चार बातें आवश्यक हैं। इनके बिना शाब्दबोध नहीं होता।

अर्थापत्ति:- दृष्ट या श्रुत विषय की उपपत्ति जिस अर्थ के बिना न हो, उस अर्थ के ज्ञान को 'अर्थापत्ति' कहते हैं। जैसे- 'देवदत्त दिन में कुछ भी नहीं खाता, फिर भी खूब मोटा है।' इस वाक्य में 'न खाना, तथापि मोटा होना', इन दोनों कथनों में समन्वय की उपपत्ति नहीं होती। अतः उपपत्ति के लिए 'रात्रि में भोजन करता है', यह कल्पना की जाती है। इस कथन से यह स्पष्ट हो गया कि 'यद्यपि दिन में वह नहीं खाता, परन्तु रात्रि में खाता है।' अतएव देवदत्त मोटा है। यहाँ पर प्रथम वाक्य में उपपत्ति लाने के लिए 'रात्रि में खाता है', यह कल्पना स्वयं की जाती है। इसी को 'अर्थापत्ति' कहते हैं। यह दो प्रकार का है : "दृष्टार्थापत्ति", जैसा कि ऊपर बताया गया है, और "श्रुतार्थापत्ति", जैसा कि सुनने में आता है कि जीवित देवदत्त घर में नहीं है। यही कारण है कि "देवदत्त कहीं और है" और इसकी कल्पना करना "अर्थापत्ति" है। अगर नहीं, तो जीवित होकर घर में नहीं रहना, दोनों को समन्वित नहीं कर सकता। प्रभाकर का विचार है कि केवल दृष्ट और श्रुत से ही नहीं, किसी भी प्रमाण से ज्ञात विषय की उपपत्ति के लिए "अर्थापत्ति" हो सकती है।

यह आमतौर पर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता, इसलिए मीमांसक एक अलग तरह का "प्रमाण" मानते हैं जिसे "अर्थापत्ति" कहा जाता है।

अनुपलब्धि:- अभाव प्रमाण के साधकतम् कारण को अनुपलब्धि (अभाव) प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ज्ञेय पदार्थों के अभाव का ज्ञान जिस साधन से होता है उसे अनुपलब्धि या अभाव प्रमाण कहते हैं। अभाव के पृथक् प्रमाणत्व को लेकर दार्शनिकों में मतभेद है। प्राभाकर मीमांसक न्याय-

वैशेषिक सांख्य-योग बौद्ध एव जैन दार्शनिक अभाव या अनुपलब्धि को पृथक् प्रमाण नहीं मानते हैं, जबकि भाट्ट मीमांसक एवं अद्वैत वेदान्ती इसे पृथक् प्रमाण मानते हैं।

वस्तुतः अनुपलब्धि के प्रामाण्य के बारे में विवाद के मूल में अभाव का स्वरूप है। अभाव के स्वरूप के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों में पर्याप्त मतभेद रहा है। नैयायिकों के अनुसार अभाव एक पदार्थ है और उसका ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से होता है। वैशेषिकों के अनुसार भी अभाव एक पदार्थ है, किन्तु उसका ज्ञान अनुमान से होता है। बौद्धों के अनुसार अभाव कल्पना मात्र है और उसका ज्ञान अनुमान से होता है। प्रभाकर मीमांसकों और सांख्यिकों के विचार में सत्ता और असत्ता ये एक ही वस्तु के दो रूप हैं। अभाव कोई पदार्थ नहीं है, किन्तु उसका ज्ञान प्रत्यक्ष से हो जाता है। भाट्ट मीमांसक और अद्वैत वेदान्ती मानते हैं कि अभाव एक पदार्थ है और उसका ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण से होता है। भाट्ट मीमांसक अभाव को अधिष्ठान से अतिरिक्त तत्त्व मानते हैं। वे प्रभाकर मीमांसकों और सांख्य दार्शनिकों की भाँति अभाव को अधिकरण स्वरूप (आधार स्वरूप) नहीं मानते। कुमारिल के अनुसार सभी वस्तुएँ सद् (भाव) एव असद् (अभाव) रूप से दो प्रकार की होती हैं। इनमें से भावात्मक पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्षादि भावात्मक प्रमाणों से और अभावात्मक पदार्थों का ज्ञान अभावात्मक प्रमाण से होता है। यही अभावात्मक प्रमाण अनुपलब्धि के नाम से जाना जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, डॉ० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, वाराणसी, पटना
2. भारतीय दर्शन परिचय (प्रथम खण्ड) न्याय दर्शन, प्रोफेसर श्रीहरिमोहन झा, मुद्रक हनुमानप्रसाद विद्यापति, प्रेस लहेरियासराय
3. भारतीय दर्शन, डॉ० उमेश मिश्र, प्रकाशक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ
4. प्रमाण और उसके भेदों के प्रामाण्य की परीक्षा, निर्देशक : प्रो० डी० एन० द्विवेदी, शोध अरुण कुमार दुबे, दर्शन विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1998
5. भारतीय दर्शन, प्रकाशक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन 6, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ, डॉ० उमेश मिश्र

Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.